अध्याय ५

## सक्तुप्रस्थेन वो नायं यज्ञस्तुल्यो नराधिपाः

# तपस्वियों के यज्ञ

महाभारत के प्रायः उपसंहार पर धर्मपुत्र महात्मा युधिष्ठिर ने महान् अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया। उस भव्य यज्ञ में दूध-दही की कुल्यायें बहती रहीं, घी के ताल भरे रहे और अनाज के पर्वतोपम ढेर लगे रहे। जम्बूद्वीप के समस्त जनपदों के असंख्य लोग और प्रायः समस्त भूपाल उस यज्ञ में महीनों पर्यन्त स्वादिष्ट भोजन और अन्य सभी मनोवाञ्छित पदार्थ पाकर अत्यन्त तृप्ति को प्राप्त होते रहे और तदुपरान्त अपने-अपने नगरों एवं घरों को लौटकर वे दीर्घकाल तक उस भव्य यज्ञ की चर्चा करते रहे।

राजा युधिष्ठिर के ऐसे महान् यज्ञ की समाप्ति पर अचानक वहाँ नीली आँखों और एक पार्श्व से काञ्चनमय शरीर वाला एक दिव्यरूप नकुल आ पहुँचा। यज्ञमण्डप में आते ही उस अद्भुत नकुल ने वज्र के समान भयङ्कर गर्जना की। उस गर्जना से समस्त मृग और पक्षी त्रस्त हो उठे, और तब उस नकुल ने मनुष्यवाणी अपनाते हुए अत्यन्त धृष्टता के साथ यह घोषणा की –

> सक्तुप्रस्थेन वो नायं यज्ञस्तुल्यो नराधिपाः।
> उञ्छवृत्तेर्वदान्यस्य कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥[१]
>
> हे पृथिवी के राजाओ! तुम्हारा यह यज्ञ तो उञ्छवृत्ति से जीविका चलाने वाले, खेतों-हाटों में गिरे दानों को बीन-बीन कर अपना निर्वाह करने वाले, कुरुक्षेत्र निवासी उस उदार ब्राह्मण के एक प्रस्थ-भर सत्तू के दान की तुलना भी नहीं कर पाया।

उस नकुल के इस विचित्र वचन से उस यज्ञ में उपस्थित सब श्रेष्ठ जन आश्चर्य में पड़ गये

[१] महाभारत *आश्वमेधिक* ९०.७, पृ.६२९३।



*Centre for Policy Studies* *www.cpsindia.org*

और युधिष्ठिर के महान् यज्ञ की इस धृष्ट अवहेलना का कारण पूछने लगे। तब वह दिव्यरूप नकुल कुरुक्षेत्र के तपस्वी, मिताहारी एवं महान् दानी ब्राह्मण की कथा इस प्रकार सुनाने लगा।

## कुरुक्षेत्र के उञ्छवृत्ति ब्राह्मण की कथा

कुछ समय पूर्व की बात है। तब धर्मज्ञ जनों से आकीर्ण धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में एक ब्राह्मण रहता था। वह तपोनिष्ठ ब्राह्मण उञ्छवृत्ति से जीवन निर्वाह करता था। किसी कपोत की भाँति वह खेतों-हाटों में गिरे अनाज के दाने एक-एक कर बीनता और इस प्रकार सञ्चित अन्न से अपना और अपने कुटुम्ब का पालन करता।

उस ब्राह्मण के परिवार में उसकी पत्नी, पुत्र एवं पुत्रवधू थे। उन सब का जीवन उञ्छवृत्ति पर ही निर्भर था। इस प्रकार गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी वे चारों तीक्ष्ण तपस्या में रत थे। उन सब का आचार-व्यवहार शुद्ध था और उन्होंने धर्म में निष्ठ हो अपनी समस्त इन्द्रियों को अपने वश में कर रखा था। उञ्छवृत्ति से अर्जित किञ्चित् अनाज का भी वे छः कालों में एक काल पर ही उपभोग करते थे, शेष पाँच काल तो वे उपवास में ही बिताते थे। जब कभी किसी कारण से छठा काल उपस्थित होने पर भोजन उपलब्ध न हो पाता तो वे अगले पाँच काल प्रतीक्षा कर पुनः छठा काल आने पर ही अन्न ग्रहण करते थे।

एकदा वहाँ भयङ्कर अकाल पड़ा। खेतों में अनाज सूख गया। सब स्थानों पर बीनने योग्य अनाज का नितान्त अभाव हो गया। उस ब्राह्मण परिवार की जीविका तो प्रत्येक भोजन काल के लिये सद्य एकत्रित अनाज से ही चलती थी। उनके पास अन्न का कोई भण्डार तो था ही नहीं। अतः खेतों-हाटों में बीनने योग्य अनाज के चुक जाने से वे सर्वथा दरिद्र हो गये। पुनः पुनः छठी भोजन वेला आती और चली जाती, परन्तु वह ब्राह्मण परिवार भूखा ही रह जाता।

इस प्रकार उनके अनेक सप्ताह बिना भोजन के ही निकल गये। अन्ततः ज्येष्ठ के शुक्ल पक्ष की एक तपती दोपहर में वह पूरे-का-पूरा ब्राह्मण परिवार उञ्छ ढूँढने निकल पड़ा। वे सब गर्मी और भूख, दोनों के ताप से तप रहे थे। उस स्थिति में भी वे अनाज ढूँढते रहे। परन्तु सब परिश्रम के पश्चात् भी वे उञ्छ पाने में सफल नहीं हो पाये। अन्न का एक भी दाना प्राप्त किये बिना ही वे घर लौटे। उनका वह छठा भोजन काल भी भूखे ही बीता।

अगले पाँच भोजनकाल बीतने तक वे बहुत कष्ट से अपने प्राणों की रक्षा कर पाये और पुनः छठा काल प्राप्त होने पर वे सभी पुनः उञ्छ बीनने निकल पड़े। इस बार भाग्य ने उनका साथ दिया और किसी प्रकार वे एक प्रस्थ-भर जौ का उपार्जन करने में सफल हुए। घर आकर उन्होंने

उस प्रस्थ-भर जौ को भून-फटक कर सत्तू बनाये। तब उन सबने नियमपूर्वक समस्त नित्यकर्म सम्पन्न किये और विधिपूर्वक जप होमादि सब क्रियायें करने के उपरान्त ही वे एक-एक कुडव सत्तू आपस में बाँटकर अपना चिरपरीक्षित अपितु किञ्चित् मात्र भोजन करने को उद्यत हुए।

अभी वे भोजन के लिये बैठे ही थे कि द्वार पर एक अतिथि आ उपस्थित हुआ। वे सब अनेक कालों से भूखे थे, पर द्वार पर आये अतिथि को देख उनका मन खिल उठा। उन्होंने उसका सहर्ष अभिवादन कर उसका कुशल-क्षेम पूछा और अपने ब्रह्मचर्य एवं गोत्र का परिचय देते हुए वे उसे सादर अपनी कुटी में लिवा लाये। तब परिवार के प्रमुख उस उञ्छवृत्ति ब्राह्मण ने अतिथि को विनयपूर्वक आसन पर बैठाकर उसे अर्घ्य एवं पाद्य प्रस्तुत किया और अपने भाग के एक कुडव सत्तू उसके सम्मुख रखते हुए सादर निवेदन किया कि न्यायपूर्वक उपार्जित ये सत्तू आपकी सेवा में अर्पित हैं, अतिथिदेव सत्तुओं को ग्रहण कर ब्राह्मण को कृतार्थ करें।

इस प्रकार सविनय निवेदन सुन और उन सत्तुओं के न्यायोचित अर्जन के प्रति आश्वस्त हो उस अतिथि ने वे एक कुडव सत्तू ग्रहण कर लिये। परन्तु इतने मात्र से उसकी भूख निवृत्त नहीं हो पायी। अतिथि को भूखा देखकर ब्राह्मण गहन चिन्ता में डूब गया। घर आये अतिथि को भूखा कैसे रखा जा सकता था? परन्तु उस तपोनिष्ठ घर में अतिथि की भूख निवृत्त करने के लिये और अन्न भी कहाँ से आता?

पति को इस प्रकार चिन्तित होता देख ब्राह्मण पत्नी ने तुरन्त अपने भाग के कुडव-भर सत्तू अतिथि को देने के लिये अपने पति के समक्ष रख दिये। परन्तु ब्राह्मण अपनी पत्नी का भाग इस प्रकार अतिथि के लिये स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं था। वह जानता था कि उसकी वृद्धा पत्नी अनेक दिनों से भूखी है। थकी-माँदी एवं क्षुधित वह निरुपाय तपस्विनी हड्डियों का ढाँचा-मात्र रह गयी थी और दुर्बलता से काँप रही थी। उसके भाग के सत्तू अतिथि को देने का साहस ब्राह्मण अपने में नहीं पा रहा था। तब पत्नी ने उसे स्मरण कराया कि पति-पत्नी तो एक-दूसरे के धर्म एवं अर्थ में एक समान साझी होते हैं, उनके कर्तव्य और प्राप्य एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं। पत्नी के इस प्रकार आग्रह करने पर ब्राह्मण ने उसके भाग के कुडव-भर सत्तू लेकर अतिथि को अर्पित कर दिये। अतिथि ने वह भाग भी ग्रहण किया, परन्तु तब भी उसकी भूख निवृत्त नहीं हो पायी और वह ब्राह्मण पुनः चिन्ताग्रस्त हो गया।

अब पुत्र ने अपने भाग के सत्तू अतिथि को भेंट करने के लिये पिता को सौंप दिये। परन्तु ब्राह्मण अपने पुत्र के इस त्याग को स्वीकार करने में अपने को असमर्थ पा रहा था। उसके लिये तो पुत्र वयस्क होने पर भी बालक के समान ही था और किसी बालक को भूखा रखने की बात वह कैसे सहन कर सकता था? तब पुत्र ने आग्रहपूर्वक पिता को बताया कि पुत्र तो पुरुष के त्राण

में कारक होने से ही 'पुत्र' संज्ञा पाता है, पुत्र पिता का आत्मज है, अपना ही है। अतः अपने त्राणकारक अपने ही आत्मभूत पुत्र से अपने धर्म की रक्षा करने में कैसा दोष? पुत्र के शील एवं दम-संयम को देख पिता अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने पुत्र के भाग के एक कुडव-भर सत्तू अतिथि को सहर्ष भेंट कर दिये। वह भाग खाकर भी आतिथि की क्षुधा शान्त नहीं हो पायी और वह ब्राह्मण पुनः गहन चिन्ता में डूब गया।

अब पुत्रवधू ने अपने भाग के सत्तू अतिथि को अर्पित करने के लिये श्वशुर के सम्मुख प्रस्तुत किए। पुत्रवधू का भाग लेने के प्रति ब्राह्मण का सङ्कोच कदाचित् सर्वाधिक विकट था। वह तो मात्र बालिका थी, नारी थी, क्षुधा से पीड़ित थी और सतत उपवास के श्रम से अत्यन्त दुर्बल हो चुकी थी। उसका भाग भला वह ब्राह्मण कैसे ले लेता? उसने पुत्रवधू को समझाया कि श्वशुर को तो सर्वदा पुत्रवधू की रक्षा ही करनी चाहिये, क्योंकि पुत्रवधू ही कुटुम्ब के सब बन्धु-बान्धवों में प्रीति का प्रवाह करती है, वही बान्धवनन्दिनी है।

इस प्रसङ्ग में ब्राह्मण का सङ्कोच अवारणीय था। परन्तु पुत्रवधू ने अत्यन्त आग्रह से श्वशुर को कहा कि घर के बड़े होने के नाते वे उसके लिये गुरुओं के भी गुरु एवं देवताओं के भी देवता समान हैं, और पुत्रवधू होने के नाते उसका शरीर, प्राण और धर्म सभी गुरुजनों की सेवा के ही अधीन हैं। अतः उन्हें उसे अपना धर्म निभाने के पुण्य से वञ्चित नहीं करना चाहिये। पुत्रवधू के इस धर्मसम्मत व्यवहार से श्वशुर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी सदाचारी सुशीला पुत्रवधू को अतिशय आशीर्वाद देते हुए उसके भाग के कुडव-भर सत्तू लेकर अतिथि को अर्पित कर दिये।

इस प्रकार उस उञ्छवृत्ति ब्राह्मण कुटुम्ब को अत्यन्त परिश्रम से अर्जित अपने चिरपरीक्षित अन्न का अन्तिम भाग घर आये अतिथि को अर्पित करते देख अतिथिदेव सम्पूर्ण सन्तुष्ट हुए। वास्तव में वे अतिथिदेव तो मानवविग्रह धारण किये हुए स्वयं धर्म ही थे। उस उञ्छवृत्ति ब्राह्मण की अतिथिधर्म में आस्था की परीक्षा लेने के लिये ही वे इस रूप में वहाँ उपस्थित हुए थे। ब्राह्मण और उसका पूरा परिवार इस परीक्षा में सफल हुआ। उन्होंने स्वयं क्षुधा से पीड़ित होते हुए भी न्यायपूर्वक प्राप्त शुद्ध अन्न अतिथि को दान कर दिया। मानवविग्रहधारी धर्म ने अत्यन्त प्रसन्न होते हुए ब्राह्मण को बताया कि उसके और उसके परिवार के इस अन्नदान से उत्तम लोकों में विचरने वाले देव और गन्धर्व ही नहीं, समस्त देवर्षि, ब्रह्मर्षि और अन्य सब अग्रणीजन विस्मित हैं। उस तपोनिष्ठ ब्राह्मण परिवार का प्रस्थ-भर सत्तुओं का वह दान अनेक अश्वमेध और राजसूय यज्ञों में किये गये धन-सम्पत्ति के अथाह दान से भी ऊँचा है। वास्तव में अपने इस प्रस्थ-भर सत्तू के दान से उन्होंने अक्षय ब्रह्मलोक को जीत लिया है। मानवविग्रहधारी धर्म के शब्दों में –

न राजसूयैर्बहुभिरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः।
न चाश्वमेधैर्बहुभिः फलं सममिदं तव।
सक्तुप्रस्थेन विजितो ब्रह्मलोकस्त्वयाक्षयः ॥[२]

स्वयं मूर्तिमान् धर्म के इस प्रकार आशीर्वाद देने पर वहाँ एक दिव्य विमान आ उपस्थित हुआ। स्वयं धर्म से ही सविनय आमन्त्रण पाकर वह उञ्छवृत्ति ब्राह्मण अपनी पत्नी, पुत्र एवं पुत्रवधू समेत उस दिव्य विमान पर आरूढ हो निर्मल ब्रह्मलोक को चला गया। मूर्तिमान् धर्म के आशीर्वाद से इस लोक में भी कुरुक्षेत्र के उस तपोनिष्ठ ब्राह्मण परिवार की कीर्ति अविचल बनी रही।

## मिट्टी से सोना बनाना

कुरुक्षेत्र के तपोनिष्ठ उञ्छवृत्ति ब्राह्मण परिवार के उस महान् अन्नदान की कथा सुनाकर उस दिव्यरूप नकुल ने युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में जुड़े ब्राह्मणों एवं अन्य अग्रजनों की सभा को बताया कि उसने स्वयं वहीं पास में एक बिल के भीतर से वह अद्भुत घटना देखी थी। ब्राह्मण परिवार के ब्रह्मलोक के लिये प्रस्थान करने के उपरान्त वह अपने बिल से बाहर निकला। ब्राह्मण के हाथ से अर्पित सत्तुओं की गन्ध उसने सूँघी, वहाँ गिरे अर्घ्य जल की कीच से उसका सम्पर्क हुआ, ब्राह्मण के सम्मान में आकाश से भूतल पर बरसे दिव्य फूलों को वह रौंदता रहा और ब्राह्मण के हाथ से छूटे अवशिष्ट अन्न के दानों में उसके मन की रति हुई। इस प्रकार उस अतुलनीय अन्नदान के अन्न के साथ परोक्ष सम्पर्क मात्र से और उस ब्राह्मण की अद्भुत तपस्या के प्रताप से उस नकुल का मस्तक और उसके शरीर का एक पार्श्व सुवर्णमय हो गये।

नकुल ने वहाँ एकत्रित ब्राह्मणों एवं अन्य अत्यन्त समर्थ जनों की सभा को प्रायः चुनौती-सी देते हुए कहा कि कुरुक्षेत्र के उस उञ्छवृत्ति ब्राह्मण के अन्नदान का प्रभाव जिस प्रकार उसके शरीर में फलीभूत हुआ है, वह वे स्वयं अपनी आँखों से देख सकते हैं। फिर कथा को आगे बढ़ाते हुए नकुल ने बताया कि उस घटना के अनन्तर वह स्थान-स्थान पर इस आशा के साथ घूम रहा है कि सम्भवतः कहीं उसका शेष शरीर भी सुवर्णमय हो जाये। राजा युधिष्ठिर के महान् यज्ञ की ख्याति सुनकर वह बहुत विश्वास के साथ वहाँ पहुँचा था, परन्तु वहाँ उसका दूसरा पार्श्व सुवर्णमय तो नहीं हो पाया। कुरुक्षेत्र के तपोनिष्ठ ब्राह्मण के हाथ से दिये गये तुच्छ सत्तुओं को

[२] महाभारत *आश्वमेधिक* ९०.१०३-१०४, पृ.६३००।

देखने-सूँघने मात्र से उसका आधा शरीर सुवर्णमय हो गया था, राजा युधिष्ठिर के भव्य अश्वमेध यज्ञ में हुए अथाह दान में वैसा प्रताप तो नहीं देखा जा सका।

इस प्रकार अपनी घोर निराशा का वर्णन करने के पश्चात् उस दिव्यरूप नकुल ने हँसते-से हुए पुनः घोषणा की कि उसकी सम्मति से तो महात्मा युधिष्ठिर का वह भव्य यज्ञ कुरुक्षेत्र के उस उञ्छवृत्ति ब्राह्मण परिवार के प्रस्थ-भर सत्तुओं के दान की समानता सर्वथा नहीं कर पाया – सक्तुप्रस्थेन यज्ञोऽयं सम्मितो नेति सर्वथा।[३]

यह घोषणा कर वह नकुल उस सभा से अदृश्य हो गया। तब वहाँ उपस्थित सब लोग भी अपने-अपने घरों को चले गये। इस प्रकार महाराजा युधिष्ठिर के उस महान् अश्वमेध यज्ञ का समापन हुआ।

महात्मा युधिष्ठिर का वह भव्य अश्वमेध यज्ञ और उसमें हुआ निर्बाध अन्नदान उस उञ्छवृत्ति ब्राह्मण के किञ्चित् अन्न के दान की समानता क्यों नहीं कर पाया? उस भव्य यज्ञ के प्रभाव से उस दिव्यमूर्ति नकुल का शेष शरीर सुवर्णमय क्यों नहीं हो पाया?

महान् यज्ञों का अनुष्ठान करते रहना और अन्न एवं अन्य सब प्रकार की धन-सम्पत्ति का सतत दान करते रहना तो भारतीय दृष्टि में महान् राजाओं एवं अन्य सभी समर्थ जनों का सहज कर्तव्य ही है। समाज के सञ्चित धन-धान्य एवं सब प्रकार की शक्ति के वाहक व संरक्षक होने के नाते उनका दायित्व है कि उस अन्न-धन आदि का समाज में प्रसार करते रहें। समाज के समर्थ जन होने के नाते उन्हीं को यह सुनिश्चित करना है कि समाज के सम्पूर्ण कार्य ऐसे संयोजित हों कि कहीं कोई भूखा-प्यासा या अन्यथा दरिद्र न रहे, कोषों में सञ्चित धन-धान्य महान् यज्ञों के माध्यम से पुनः समाज में प्रवाहित होता रहे और समाज में पनप रहे विभिन्न कला-कौशल और सब प्रकार की शक्ति के लिये समुचित अभिव्यक्ति के अवसर मिलते रहें। वस्तुतः समाज को भूख एवं दारिद्र्य से मुक्त रखने और प्रजा को अपने सब कार्य समुचित रीति-नीति से चलाये रखने में सक्षम बनाने के लिये सभी उपयुक्त संयोजन करने के राजाओं एवं अन्य सभी समर्थ जनों के कर्तव्य एवं दायित्व के शास्त्र को ही सर्वदा भारत में राजनीति की संज्ञा दी गयी है। अगले अध्यायों में हमें राजनीति की इस भारतीय परिभाषा को और विस्तार से देखने-समझने का अवसर मिलेगा।

परन्तु अन्न बाँटकर खाने का दायित्व तो अकेले राजाओं एवं अन्य समर्थ जनों तक सीमित नहीं है। भारत में सब से ही यह अपेक्षा की गयी है कि वे स्वयं भोजन पर बैठने से पूर्व अपने

---

[३] महाभारत *आश्वमेधिक* ९०.११५, पृ.६३०१।

आसपास के सभी जीवों की भूख का समाधान करें। भारतीय चिन्तन में यह अपेक्षा मानव जीवन के मूलभूत अनुशासन का स्थान रखती है। अगले अध्यायों में हम देखेंगे कि भारतीय श्रौत-स्मार्त साहित्य में यह मौलिक अनुशासन कैसी दृढता एवं विशदता से अभिव्यक्त हुआ है।

समाज को भूख एवं दारिद्रय से मुक्त रखने और सर्वदा बाँटकर ही स्वयं खाने का सहज अनुशासन तो अनतिक्रमणीय है ही। परन्तु उञ्छवृत्ति ब्राह्मण की कथा इस सहज अनुशासन से भी आगे की बात कहती है। धर्म की मर्यादा राजाओं एवं समर्थ जनों के धन-धान्य बाँटते रहने और सामान्य गृहस्थों के सर्वदा बाँटकर खाने के नित्य नियम से भी गुरुतर है। धर्म की मर्यादा का पार पाने के लिये तो स्वयं भूखे रहकर भी दूसरों की भूख का निवारण करना होता है। राजकोषों में सञ्चित अन्न-धन को दान कर उसे पुनः समाज में प्रवाहित करते रहना और स्वयं भोजन पर बैठने से पहले दूसरों का भाग निकालते रहना निश्चय ही धर्मसम्मत कर्म हैं। परन्तु इन कर्मों का नियमित अनुष्ठान कर मानव अपना सहज मानवीय कर्तव्य मात्र निभाता है। इस प्रकार अपना कर्तव्य करते रहना सब के लिये अनिवार्य ही है। यह सहज धर्म है। धर्म की पराकाष्ठा तो स्वयं भूखे रहकर दूसरों की भूख निवृत्त करने में, अपने भोजन का अन्तिम कौर तक दान कर देने में है। जो धर्मनिष्ठ राजा महान् यज्ञों का अनुष्ठान कर अपने कोषों में सञ्चित अन्न एवं धन-सम्पत्ति का विसर्जन करते रहते हैं, और जो पुण्यकर्मा गृहस्थ स्वयं खाने से पूर्व दूसरों की भूख निवृत्त करने का प्रयास करते हैं, वे अपना कर्तव्य निभाकर पाप से बच जाते हैं। परन्तु जो स्वयं अपने खाने के लिये कुछ शेष न रख दूसरों को भोजन करवाते हैं, वे महान् पुण्य के भागी होते हैं। धर्मनिष्ठ राजा और अनुशासित गृहस्थ अपना कर्तव्य निभाकर जगत् को अपनी मर्यादा में बाँधे रखने में सहायक होते हैं। उनके कर्मों से संसार अपनी सहज गति से चलता रहता है। अपने को भूखा रखकर दूसरों को खिलाने वालों की उपस्थिति से तो जगत् पुण्यमय हो जाता है। ऐसे तपस्वियों के कर्म से मिट्टी भी सोना हो जाती है।

## कपोत दम्पती की कथा

महाभारत में अतिथि के लिये अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर देने वाले एक अन्य तपोनिष्ठ गृहस्थ का वर्णन भी हुआ है। इस दूसरी कथा का आतिथेय एक शीलवान् कपोत है और अतिथि एक क्रूर व्याध, जिसने कपोत की कपोती पत्नी को ही पिञ्जरे में कारावद्ध कर रखा है। महाभारत के शान्तिपर्व में वर्णित कपोत के आत्म उत्सर्ग की यह कथा महात्मा युधिष्ठिर के भव्य अश्वमेध यज्ञ के उपसंहार पर उस दिव्यरुप नकुल द्वारा सुनायी गयी कुरुक्षेत्र के उञ्छवृत्ति ब्राह्मण की कथा

का पूर्वाभास-सा करवाती प्रतीत होती है। वह तपस्वी ब्राह्मण भी तो कपोत की भाँति एक-एक दाना अनाज चुगकर ही अपनी जीविका का निर्वाह करता था, और इस कथा के कपोत की भाँति ही उसने अपने और अपने सम्पूर्ण परिवार के प्राणों की उपेक्षा कर घर आये अतिथि का समुचित सम्मान किया था।

कपोत दम्पती की यह कथा शान्ति पर्व के अन्तर्गत आपद्धर्म पर्व में भीष्म पितामह युधिष्ठिर को सुनाते हैं। भीष्म कहते हैं कि पूर्वकाल में यह कथा भार्गव मुनि परशुराम ने राजा मुचुकुन्द को सुनाई थी। राजा मुचुकुन्द ने भार्गव मुनि से शरणागत की रक्षा करने के धर्म की महिमा जानने की इच्छा की थी। तब मुनि ने सर्वपाप प्रणाशिनी यह दिव्य कथा सुनाते हुए कहा –

एक समय की बात है। तब किसी महान् वन में एक भयङ्कर व्याध विचरा करता था। उस का शरीर काले कौवे के समान काला था और भयानक लाल-लाल आँखें थीं। भारी जाङ्घों, छोटे-छोटे पैरों, विशाल मुख और दीर्घ हनु से युक्त कृष्णवर्ण शरीर पर रक्तिम आँखें लिये वह पृथिवी पर अवतरित काल-सा ही दिखायी देता था। उसकी क्रूरता की कोई सीमा नहीं थी। प्रतिदिन वह वन में जाकर अपना जाल फैलाता और झुण्डों-के-झुण्ड पक्षियों को फाँसकर उनके मांस का व्यापार करता। यही उसका नित्य कर्म था। दीर्घ काल तक वह अपनी इस क्रूर वृत्ति का वहन करता रहा, परन्तु कभी उसे अपने अधर्म का बोध नहीं हो पाया।

एकदा जब वह पक्षियों में मृत्यु का प्रसार करने की अपनी पापवृत्ति पर आचरण करते हुए वन में विचर रहा था, तभी वहाँ सहसा भीषण झञ्झावात घिर आया। प्रचण्ड वेग से चलती आँधी से महान् वृक्ष धराशायी होने लगे। आकाश घने मेघों से आच्छादित हो गया। उस समय चारों ओर गहन अन्धकार व्याप्त था और बीच-बीच में कड़कती विद्युल्लेखा घटाटोप को तोड़कर आकाश को प्रभामण्डित कर जाती थी। शीघ्र ही मूसलाधार वर्षा होने लगी और एक मुहूर्त-भर में ही पृथिवी जल से परिपूर्ण हो गयी।

मूसलाधार वर्षा और सहसा व्याप्त भीषण शीत को झेलता हुआ वह व्याध प्रायः अचेत-सा हो गया। व्याकुल हृदय से वह वन में इधर-उधर भटकने लगा। उसे ऊँचे-नीचे स्थल का भी भास नहीं हो पा रहा था। भय और भूख से पीड़ित वन्य जीवों के झुण्ड उसके आसपास भागे जा रहे थे। अनेक मृग, सिंह एवं वराह ऊँची भूमि का आश्रय लेकर लेटे हुए थे। पक्षी अपने घोंसलों में जा छिपे थे। उनमें से अनेक वर्षा के वेग को झेलने में असमर्थ हो धरती पर गिरे पड़े थे।

## कपोत दम्पती की कथा

वह व्याध भी वर्षा एवं शीत से मृतप्राय हो रहा था। उससे न खड़ा हुआ जा रहा था, न चला ही जा रहा था। ऐसी अवस्था में उसे धरती पर गिरी पड़ी एक कपोती दिखायी दी। शीत से विह्वल वह कपोती हिल-डुल भी नहीं सकती थी। वह व्याध स्वयं भी प्रायः वैसी ही असहाय स्थिति में था। परन्तु अपनी नित्य की क्रूर वृत्ति से बँधे हुए उस व्याध ने स्वयं अत्यन्त कठिन स्थिति में होते हुए भी उस असहाय पड़ी कपोती को उठाकर पिञ्जरे में डाल लिया। पापकर्म के अभ्यस्त उस व्याध से भीषण विपत्ति काल में भी पाप ही बन पड़ा।

तभी सहसा उस व्याध को एक बहुत बड़ा एवं सघन वृक्ष दिखायी दिया। असंख्य पक्षी फल, छाया एवं आवास पाने की आशा से जलगर्भित मेघ के समान नीलवर्ण उस वृक्ष का आश्रय लिये हुए थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो विधाता ने परोपकार के लिये ही उस साधुवत् पेड़ का सृजन किया हो। जैसे ही वह महान् पेड़ उस व्याध की दृष्टि में आया तभी मेघ छट गये और तारे चमकने लगे। सहसा तारों से भरा निर्मल आकाश ऐसे प्रकाशित होने लगा मानो कमल-पुष्पों से आच्छादित कोई विशाल सरोवर शोभायमान् हो रहा हो।

आकाश के इस प्रकार मेघों से मुक्त होने पर व्याध ने चारों दिशाओं की ओर दृष्टिपात किया। तब उसे भास हुआ कि उस गहन रात्रि में वह अपने निवास स्थान से बहुत दूर भटक गया है। वह अभी भी शीत से विह्वल हो रहा था। अतः उसने वहीं उस वृक्ष के नीचे रात्रि बिताने का निश्चय किया। फिर उसने शरणागत की रक्षा के लिये वृक्ष के देवताओं का सविनय आह्वान किया और पृथिवी पर पत्तों की शय्या बिछा एवं एक शिला पर सिर रखकर वह वहीं सो गया।

दैवयोग से उसी वृक्ष पर एक सुन्दर चितकबरा कपोत अपने सुहृद्-सम्बन्धियों सहित निवास करता था। उसकी कपोती-पत्नी सवेरे से ही दाना चुगने निकली थी। सायं पड़ने पर कपोती घर नहीं लौटी थी। रात घिरती देख वह कपोत अपनी कपोती के लिये चिन्तित होने लगा था। जब वह व्याध उस वृक्ष के नीचे पहुँचा तो कपोत अपनी प्रिय पत्नी के लिये अत्यन्त विह्वल हो विलाप कर रहा था। उसे पुनः पुनः कपोती के किञ्चित् रक्तिम नेत्रों, चितकबरे अङ्गों और मधुर स्वर का स्मरण हो रहा था। बिलख-बिलख कर वह कह रहा था कि उसकी प्रिय कपोती तो उसे खिलाये बिना कभी खाती नहीं थी, उसके सोने से पहले कभी सोती नहीं थी और उसके स्नान करने से पहले कभी स्वयं स्नान नहीं करती थी। अत्यन्त दीन स्वर में वह स्मरण कर रहा था कि कैसे वह पतिव्रता सर्वदा उसके दुःख में दुःखी और उसके सुख में सुखी दिखायी देती थी। अपनी प्राणवल्लभा कपोती के लिये इस प्रकार विलाप करते हुए वह अपने से ही पूछ रहा था कि उसकी कपोती घर न लौटी तो फिर उसके अपने जीवन का क्या प्रयोजन रहेगा? गृहिणी के बिना उसके गृह का क्या होगा? उस साध्वी, पतिव्रता, प्रियवादिनी भार्या के अभाव में उसका

गृह तो गृह नहीं रहेगा, अरण्य ही हो जायेगा। ऐसे वह कपोत अपनी प्रिय कपोती के विरह में विलाप किये जा रहा था।

वृक्ष के नीचे व्याध के पिञ्जरे में कारावद्ध कपोती ने अपने पति का यह विलाप सुना तो वह धन्य हो गयी। उसने सोचा कि पति के मुँह से अपने गुणों का ऐसा बखान सुनने से बढ़कर किसी पत्नी का और क्या सौभाग्य हो सकता है? जिसके पति उससे ऐसे सन्तुष्ट हों, उस पत्नी के लिये इस जगत् में पाने योग्य शेष क्या रह जाता है? इस प्रकार अत्यन्त कृतकृत्य हुई कपोती को अपने सब दुःख भूल गये। व्याध के पिञ्जरे में रुद्ध उस असहाय गृहिणी को किसी प्रकार अपने पति के गृहस्थधर्म की रक्षा का उपाय करने का ही बोध रह गया। उसने कपोत को सम्बोधित करते हुए कहा, 'कान्त, घर में अतिथिदेव आये हैं। इस समय आपका कर्तव्य अतिथि की आवभगत करना ही है। देखिये, यह व्याध अतिथि हमारे घर आकर भूख एवं शीत से आर्त हुआ सो रहा है। आप मेरी चिन्ता छोड़ इन शरणागत अतिथि के स्वागत-सत्कार का प्रबन्ध कीजिये।' कपोत के धर्म की रक्षा के प्रति उद्विग्न कपोती ने उसे अतिथि सेवा में अपना सर्वस्व लगा देने के लिये प्रेरित करते हुए स्मरण करवाया कि, 'द्विज कपोत! आप अब सन्तानवान् और पुत्रवान् हो चुके हैं। अतः अब तो आपको स्वदेह पर भी दया त्याग कर केवल धर्म एवं अर्थ का आश्रय ले इस व्याध अतिथि की ऐसी सेवा करनी चाहिये कि यह अन्तश्चित्त तक प्रसन्न हो जाये।'

कपोती के धर्मसम्मत वचन सुन कर कपोत अतीव प्रसन्न हुआ। हर्षातिरेक से उसकी आँखें छलछला आयीं। उसने तुरन्त विधिपूर्वक पक्षियों के शत्रु उस व्याध का पूजन किया और सविनय निवेदन करते हुए कहा, 'आपका स्वागत है। कहिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आप मेरे इस तुच्छ घर को अपना ही घर समझिये। अब आपको किसी प्रकार का सन्ताप करने की आवश्यकता नहीं।' व्याध के सङ्कोच का निवारण करते हुए उसने श्रद्धापूर्वक उसे विश्वास दिलवाया कि घर आये शत्रु का भी समुचित आतिथ्य तो गृहस्थ को करना ही होता है, भला कोई वृक्ष अपने को ही काटने आये किसी लकड़हारे के ऊपर से अपनी छाया हटा तो नहीं लेता – छेत्तुमप्यागते छायां नोपसंहरते द्रुमः।[४]

व्याध ने कपोत का आतिथ्य स्वीकार करते हुए उसे कहा कि वह शीत से अत्यन्त कष्ट पा रहा है। कदाचित् शीत से बचने का कोई उपाय हो पाता! कपोत ने अतिथि की इच्छा का सम्मान करते हुए तुरन्त वहाँ सूखे पत्तों का ढेर लगा दिया और द्रुतवेग से उड़कर लोहार के घर से आग ले आया। शीघ्र ही वहाँ आग की ऊँची लपटें उठने लगीं। व्याध ने चैन से अग्नि का सेवन किया। सब अङ्गों को भली भाँति आग पर तपाने के उपरान्त उसके प्राण-में-प्राण आये, और तब उसे

[४] महाभारत *शान्ति* १४६.५, पृ.४८०७।



Centre for Policy Studies www.cpsindia.org

भूख सताने लगी। हर्ष से सिक्त होते हुए उसने कपोत से भोजन का कोई उपाय करने का आग्रह किया।

कपोत के घर पर अनाज का कोई भण्डार होने का तो प्रश्न ही नहीं था। वह तो वन का पक्षी मात्र था। नित्य चुगकर लाये गये दानों से ही उसका नित्य का भोजन होता था। उसके यहाँ सञ्चय कैसा? यह जानते हुए वह कपोत गहन चिन्ता में पड़ गया। परिस्थिति की विकटता को देख उसमें अपनी कपोत वृत्ति के प्रति संशय का भाव जागृत होने लगा। उसे लगा कि ऐसी वृत्ति भी भला कोई वृत्ति हुई जिसका निर्वाह करते हुए कोई घर आये अतिथि का समुचित स्वागत-सत्कार भी न कर सके?

परन्तु उसके भाग में जैसी भी जीविका आयी हो, वह धर्मनिष्ठ कपोत घर आये अतिथि को भूखा तो नहीं रख सकता था। अतः अपनी परिस्थिति पर किञ्चित् विचार करने के उपरान्त उसने मन-ही-मन कुछ निश्चय किया, और फिर ढेर से सूखे पत्ते इकट्ठे कर अग्नि को पुनः प्रज्वलित कर दिया। अग्नि की लपटें पर्याप्त ऊँची उठने पर वह व्याध की ओर अभिमुख हुआ और अत्यन्त विनम्रता से निवेदन करने लगा कि उसके घर में अनाज तो नहीं है, अतः अतिथिदेव उसके शरीर को ही भोजन के रूप में स्वीकार करें। ऐसा कहकर और अतिथि को सन्तुष्ट करने का सङ्कल्प ले उसने तीन बार अग्नि की प्रदक्षिणा की, और तब वह हँसते-हँसते अग्नि में प्रवेश कर गया।

कपोत के आत्म उत्सर्ग को देख वह क्रूर व्याध अन्तरात्मा तक हिल गया। उसे सहसा भान हुआ कि उससे भयङ्कर पाप बन पड़ा है, और जिस प्रकार की क्रूर पापवृत्ति उसने अपना रखी है उसके चलते तो उससे नित्य पाप ही बनता रहेगा। उस पापवृत्ति को अब और वहन करना उसे असम्भव-सा लगने लगा। कपोत ने प्रसन्नतापूर्वक आत्म उत्सर्ग कर उसके सम्मुख धर्मसम्मत आचरण का उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत किया था। अब वह क्रूरकर्मा व्याध उसी पुण्यपथ का अनुकरण करना चाहता था। उसने तुरन्त कपोती को पिञ्जरे से मुक्त कर दिया और अपनी लाठी, शलाका, जाल और पिञ्जरा सब छोड़ तथा कठोर तप का पालन करने का सङ्कल्प ले, वह महाप्रस्थान के पथ पर निकल पड़ा।

पिञ्जरे से मुक्त हुई कपोती अपने पति के साथ बिताये सुखी जीवन का स्मरण कर कुछ काल तक दारुण विलाप करती रही और फिर पति की विरह सहने में अपने को असमर्थ पा वह उसी प्रज्वलित अग्नि में कूद पड़ी। इस प्रकार देह त्याग करते ही वह अपने कपोत पति के साथ जा मिली। तुरन्त दिव्य विमानों पर आरूढ असंख्य पुण्यकर्मा महात्मा कपोत-कपोती को ससम्मान स्वर्गलोक लिवाने के लिये आ पहुँचे। वे असाधारण पुण्यशील कपोत-कपोती अद्भुत विभूषणों



Centre for Policy Studies www.cpsindia.org

से अलङ्कृत और दिव्य महात्माओं से पूजित हो एक श्रेष्ठ विमान पर आरूढ हुए। अनेक दिव्य विमानों से आवृत उनका वह श्रेष्ठ विमान शीघ्र ही स्वर्गलोक जा पहुँचा और अपने सत्कर्मों से सर्वदा पूजित वे कपोत-कपोती अनन्तकाल तक आनन्दपूर्वक स्वर्गलोक में विचरते रहे।

उधर वह व्याध सब लोभ-मोह छोड़कर हिंसक पशुओं एवं कँटीली झाड़ियों से भरे एक भयङ्कर निर्जन वन में गहरे घुसता चला गया। अन्ततः उस भयङ्कर वन में उठी एक दावानल में वह भस्म हो गया। उस दावानल में जलकर उसके सब पाप भी जल गये और इस प्रकार वह क्रूरकर्मा व्याध भी पुण्यशील कपोत-कपोती की सङ्गत के प्रभाव से परम गति को प्राप्त हुआ।

उस कपोत-दम्पती ने इस प्रकार अद्भुत अतिथिसेवा कर गृहस्थाश्रम धर्म का पालन किया। धर्म के प्रति उनकी आस्था अत्यन्त गहन थी। अपनी उस आस्था का निर्वाह करते हुए वे न केवल स्वयं स्वर्गलोक को प्राप्त हुए, उन्होंने उस क्रूरकर्मा पापी व्याध को भी धर्म की ओर प्रवृत्त कर उसके लिये स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

कपोत-कपोती ने घर आये अतिथि की भूख निवृत्त करने के लिये निश्चय ही असाधारण त्याग किया। परन्तु अपने असाधारण कर्म से वे वस्तुतः गृहस्थ के सहज साधारण धर्म का निर्वाह ही कर रहे थे। घर आये अतिथि का स्वागत-सत्कार करना और सब प्रकार से उसको सन्तुष्ट करना तो गृहस्थ का सहज धर्म है ही। जैसे कि स्वयं कपोत ने उस व्याध अतिथि को बताया था –

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।
छेत्तुमप्यागते छायां नोपसंहरते द्रुमः ॥[५]

शत्रु भी अतिथि होकर घर आये तो उसका समुचित स्वागत-सत्कार करना ही होता है। भला कोई वृक्ष स्वयं अपने को ही काटने आये किसी के ऊपर से अपनी छाया समेट तो नहीं लेता।

आगे कपोत ने कहा था –

शरणागतस्य कर्तव्यमातिथ्यं हि प्रयत्नतः।
पञ्चयज्ञप्रवृत्तेन गृहस्थेन विशेषतः।
पञ्चयज्ञांस्तु यो मोहान्न करोति गृहाश्रमे।
तस्य नायं न च परो लोको भवति धर्मतः ॥[६]

[५] महाभारत *शान्ति* १४६.५, पृ.४८०७।
[६] महाभारत *शान्ति* १४६.६-७, पृ.४८०७-०८।

## कपोत दम्पती की कथा

शरणागत का समुचित आतिथ्य करना तो सभी के लिये अनिवार्य है, परन्तु पञ्चयज्ञ में प्रवृत्त गृहस्थ का तो यह विशेष कर्तव्य बनता है। जो गृहस्थाश्रम में स्थित होते हुए भी पञ्चयज्ञ का अनुष्ठान नहीं करता उसके लिये तो न इस लोक में और न परलोक में कोई धर्मसम्मत स्थान शेष रहता है।

गृहस्थ तो एक महान् फलवान् वृक्ष के समान होता है। उसके घर पहुँच सभी अर्थियों को आतिथ्य प्राप्त होता है। घर आये अर्थियों की ही नहीं अपितु अपने आसपास के सभी भूतों की क्षुधा निवृत्त करने और स्वयं भोजन पर बैठने से पूर्व सृष्टि के समस्त भावों का भाग निकालने के गृहस्थ के नित्य अनुशासन का नाम ही पञ्चमहायज्ञ है। अगले अध्याय में हम गृहस्थाश्रम के इस अनतिक्रमणीय नित्यकर्म का किञ्चित् विस्तार से वर्णन करेंगे।

महाभारत के कपोत दम्पती और कुरुक्षेत्र निवासी कपोतवृत्ति ब्राह्मण परिवार ने असाधारण पञ्चमहायज्ञ का अनुष्ठान किया। गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी उन्होंने महान् तप की साधना की। अब आगे हम साधारण गृहस्थों के साधारण परन्तु अनुशासित जीवन में नित्यप्रति किये जाने वाले साधारण पञ्चमहायज्ञों की चर्चा करेंगे।